पेरिस
शिवरात्रि
मार्च ६, २००८

सन्देश संख्या १३७

मौलिक प्रश्न पूछें

मन की कल्पना से उत्पन्न 'ईश्वर' जीवन की समझदारी से तिरोहित क्यों नहीं होता ?

मानसिक उलझनों के विखण्डन, शून्यता की अग्नि में जल क्यों नहीं जाते?

ईश्वर के नाम पर मन का चरम लोभ तथा सुख की निरन्तर चाहत अस्तित्व के परमानन्द के लिए समाप्त क्यों नहीं होता ? भ्रामक मानसिक निरन्तरता को बनाये रखने के लिए क्या ''मोक्ष'', ''मुक्ति'', ''निर्वाण'', ''आत्मा'', ''उद्धारक'', ''उद्धार'', ''प्रबोध'' आदि केवल उधार के शब्द नहीं है ?

शारीरिक कष्ट की मंगलमयता जीवन में विखण्डित कष्ट–भोक्ता को क्यों जन्म देती है?

''मैं'' की समाप्ति के लिए समर्पण घटित क्यों नहीं होता?

हम क्यों नहीं समझ पाते कि प्रत्येक अनुभव, चाहे वह कितना ही गहरा क्यों न हो, हमें उस जीवन से दूर करता है जिसका कोई गन्तव्य नहीं । कोई भी तरीका नहीं है जिससे कि तुम (मन) जीवन, प्रेम और चैतन्य के बारे में जान सको । जीवन की उधारी परिभाषा का कोई भी अर्थ नहीं है – इसे हम अपने हड्डियों में क्यों नहीं अनुभूत कर पाते ?

''ईश्वर'' को खोजने, नेताओं एवं गुरुओं का अनुसरण करने, एकान्त से दूर रहने, युद्ध करने तथा समूह या माफिया में शामिल होने के प्रति हमारा झुकाव क्यों होता है ?

हम क्यों नहीं समझ पाते कि जीवन की मृत्यु नहीं होती, शरीर अपनी मृत्यु के पश्चात केवल अपना रूप परिवर्तन करता है और जीवन के प्रवाह में अपने नए स्वरूप में बना रहता है ?

तुम क्यों नहीं देख पाते कि जीवन की रुचि ''जीवनोपरान्त'' में नहीं है, यह मन ही है जो इसके बारे में बात करता है और ये बातें, पण्डितों, पुरोहितों एवं मुल्लाओं की उधारी विश्वास–पद्धतियों द्वारा की गयी मगज–धुलाई पर आधारित होती हैं?

हम यह नहीं जान पाते कि जीवन की रुचि केवल वर्तमान में जीवित रहने तथा अपनी वंश–वृद्धि करने में है, अतीत की व्याख्या या भविष्य की कल्पना में नहीं ? जीवन गली के एक आवारा कुत्ते की तरह है जो व्यस्ततम समय में भी सड़क को किसी तरह पार कर जाता है । क्या आपने भारत के बड़े शहरों में इसे नहीं देखा है ? ईश्वर को धन्यवाद कि वह कुत्ता है । यदि मनुष्य होता तो एक पुस्तक लिख दिया होता ''व्यस्ततम समय में सड़क कैसे पार करें'' और करोड़ों रुपये कमा लेता । तब वह कुत्ता एक प्रभावशाली प्रबन्धन–गुरु या धार्मिक गुरु बन जाता ।

इन प्रश्नों के साथ उपर्युक्त प्रश्नों की पराकाष्ठा होने पर ''मैं'' का संहार (शिव–प्रक्रिया) हो जाता है और सत्य, समझदारी और करुणा का उदय होता है । सत्य समझदारी लाता है, सफलता नहीं । सफलता या विफलता तो ''मैं'' के कृत्य हैं जो आत्मकेन्द्रित गतिविधियों की विडम्बनाओं को बढ़वा देते हैं।

।। जय शिव ।।